दैनिक भास्कर

Date: 26-12-24

कुपोषण बने रहने की बड़ी वजह भ्रष्टाचार है

संपादकीय

दुनिया की 5वीं बड़ी इकोनॉमी भारत की सबसे बड़ी समस्या है। कुपोषण | आखिर क्या वजह है कि कई दशकों से विभिन्न योजनाओं में हजारों करोड़ रुपए खर्च करने के बावजूद समस्या बनी हुई है। इसका कारण जानना कोई रॉकेट साइंस नहीं है। अच्छे इरादों से बनी नीतियों के बावजूद अमल के स्तर पर भ्रष्टाचार और प्रशासनिक अकर्मण्यता समस्या का मूल कारण है। इसी अखबार के रिपोर्टर ने जब उत्तर भारत के एक राज्य में आंगनवाड़ी केन्द्रों से दिए जाने वाले फोर्टिफाइड पोषण आहार को एक निजी लैब में टेस्ट कराया तो अधिकांश विटामिन्स सरकारी दावों से कम मिले। सरकार की ही हालिया रिपोर्ट बताती है कि देश के 80% बच्चे 'न्यूनतम स्वीकार्य पोषक तत्व' नहीं पाते। चिकित्सा विज्ञान और डब्ल्यूएचओ भी कहता है कि कुपोषित बच्चों का शारीरिक, मानसिक ही नहीं भावनात्मक (इमोशनल कोशंट) विकास भी नहीं हो पाता। मानसिक विकास के अभाव में बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता न्यून होती है, लिहाजा ऐसे बच्चे पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं। जबकि भावनात्मक विकास नहीं होने से उनका अपने कृत्यों पर नैतिक नियंत्रण कम होता है। आज के दौर में जब ज्ञान को ही शक्ति माना जाता है तो कुपोषित बच्चे आज के ज्ञान-आधारित उत्पादन में कम योगदान कर पाते हैं। इससे उनकी आय प्रभावित होती है और देश विकास में पिछड़ता है।

Date: 26-12-24

हमें 'जीएसटी' को सरल और व्यावहारिक बनाना होगा

चेतन भगत, (अंग्रेजी के उपन्यासकार)

पिछले दशक के सबसे कठिन सुधारों में से एक राष्ट्रीय जीएसटी था, जिसे 2017 में लागू किया गया। इसने विभिन्न केंद्रीय और राज्यों के अप्रत्यक्ष करों की जगह ले ली। संसद के दोनों सदनों के अलावा हर राज्य की विधानसभा को भी जीएसटी विधेयक पारित करना था। इसके कारण लाखों व्यवसायों की पूरी टैक्स प्रणाली को बदलना पड़ा।

ऑनलाइन सिस्टम बनाना पड़ा। केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व का विभाजन तय करना पड़ा। विपक्ष की आलोचना सहनी पड़ी। जनता का विश्वास जीतना भी जरूरी था। भारत जैसे देश के लिए यह एक धीमा और कठिन सुधार था।

शायद यही कारण है कि इसे भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार की प्रमुख उपलब्धियों में से एक माना जाता है। जीएसटी का बुनियादी मकसद यह था कि कर-व्यवस्था एक समान, सरलीकृत और बेकार की झंझटों से मुक्त हो।

और इसके बावजूद पिछले हफ्ते इंटरनेट पर कैरेमलाइज्ड-पॉपकॉर्न पर जीएसटी को लेकर मीम्स की धूम मची हुई थी। पता चला कि सादे या नमकीन पॉपकॉर्न पर 5% जीएसटी लगता है, लेकिन कैरेमलाइज्ड पर 18% टैक्स लगता है।

कारण? क्योंकि चीनी वाले स्नैक्स पर 18% जीएसटी लगता है, जबकि नमकीन स्नैक्स पर 5% ही लगता है। चूंकि कैरेमलाइज्ड-पॉपकॉर्न मीठा होता है, इसलिए आपको ज्यादा टैक्स देना पड़ता है। खुद देश की वित्त मंत्री को एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में इस बात को स्पष्ट करना पड़ा।

कुछ महीने पहले, दक्षिण भारत की एक रेस्तरां-चेन के मालिक ने बताया था कि कैसे बन पर कम टैक्स लगता है, क्रीम पर कम टैक्स लगता है, लेकिन अगर क्रीम को बन पर लगाया जाए, तो दोनों पर ज्यादा टैक्स लगता है।

इसका नतीजा यह रहा कि उनके ग्राहक क्रीम और बन अलग-अलग मांगने लगे। यह बात मजाक में कही गई थी, लेकिन यह एक सच्चाई को भी दर्शाती है। यह कि चीजों को सरल बनाने के मकसद से किया गया जीएसटी समय के साथ और जटिल होता जा रहा है।

इस समस्या का मूल कारण नीति-निर्माताओं की मानसिकता है। वे हर चीज को नियंत्रित करने की अपनी इच्छा को नहीं छोड़ सकते, टैक्स में भी अपनी नैतिकता थोप सकते हैं, अतिरिक्त कर-राजस्व की हर बूंद निचोड़ने के लिए 'चतुर' नीतियां बना सकते हैं और जीएसटी के पीछे के इस व्यापक उद्देश्य को देख नहीं पाते कि उसे चीजों को सरल बनाने के लिए लाया गया था। अनेक टैक्स स्लैब, उपकरों और नीति-निर्माताओं के हाथों में अनियंत्रित शक्तियों वाला जटिल जीएसटी, जीएसटी सुधार न होने के बराबर है।

जीएसटी की शुरुआत के समय इसमें चार स्लैब थे : 5%, 12%, 18% और 28%। कुछ वस्तुओं को जीएसटी से छूट दी गई थी, जिससे उन पर 0% स्लैब जुड़ गया। ईंधन जैसी कुछ वस्तुओं को जीएसटी से बाहर रखा गया, जिन पर कर की दरें और अधिक थीं। इससे अतिरिक्त स्लैब बन गया।

इस प्रकार, हमने छह अलग-अलग जीएसटी दरों के साथ शुरुआत की। समय के साथ, कुछ उत्पादों (जैसे लग्जरी कारों) पर कई तरह के उपकर जोड़े गए, जिसका अर्थ है कि इन छह स्लैबों में और भी हेरफेर करके नीति-निर्माता अपनी इच्छानुसार जीएसटी दर तय कर सकते हैं।

कई स्लैब के साथ शुरुआत करने के पीछे जटिल व्यवस्था में सुधार का विचार था। लेकिन जैसे-जैसे हम 2025 के करीब पहुंच रहे हैं, हमें जीएसटी को और सरल बनाना चाहिए। इसे दो स्लैब से अधिक नहीं करना चाहिए और उपकरों को समाप्त कर देना चाहिए। तभी जीएसटी के वास्तविक लाभ महसूस किए जा सकते हैं।

लेकिन अभी तो हम मीठे बनाम नमकीन और उनकी कर-दरों पर बहस में ही उलझे हैं। वैसे, नमकीन स्नैक्स भी पाचन के दौरान शरीर द्वारा शुगर के रूप में ही टूटता है। तो क्या जीएसटी को स्नैक्स को हजम करने के बाद वाली शुगर पर भी टैक्स लगाना चाहिए?

पॉपकॉर्न और क्रीम बन्स ही भारत में अजीबोगरीब कर-वाली वस्तुएं नहीं हैं। झाड़ू पर 0% जीएसटी है, वैक्यूम क्लीनर पर 28% है। 1,000 से कम कीमत वाले जूतों पर 5% कर लगाया जाता है, इससे महंगे जूतों पर 18%। एसी रेस्तरां पर नॉन-एसी से अधिक कर लगाया जाता है।

इनमें से कई नीतियां उदारीकरण से पहले की इस मानसिकता से उपजी हैं कि जो चीज अच्छी, मजेदार, आरामदायक हो, उस पर टैक्स लगा दो। और अगर कोई चीज उच्च गुणवत्ता वाली है या सम्पन्न लोगों द्वारा उपयोग की जाती है तो उस पर और टैक्स लगाया जाना चाहिए। जबकि जीएसटी पहले ही एक परसेंटेज-बेस्ट टैक्स है, जो सुनिश्चित करता है कि ऊंची कीमतों वाले आइटम्स अधिक कर-भुगतान करेंगे।

2025 का बजट जीएसटी-सुधारों का अवसर है। हमें टैक्स-स्लैब को सरल बनाना होगा और सुनिश्चित करना होगा कि 98% से अधिक आइटम एक या दो स्लैब में आते हों। लग्जरी वाली चीजें बुरी हैं, यह मानसिकता भी बदलनी होगी।

दैनिक जागरण

Date: 26-12-24

नदी जोड़ो अभियान

संपादकीय

प्रधानमंत्री की ओर से केन-बेतवा नदियों को जोड़ने की परियोजना का शिलान्यास एक महत्वाकांक्षी परियोजना को गति प्रदान करना है। इस परियोजना से मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र के लाखों लोग लाभान्वित होंगे। यह परियोजना पेयजल के साथ सिंचाई के पानी के संकट को भी दूर करने में सहायक बनेगी। इसके अतिरिक्त यह बिजली का भी उत्पादन करेगी।

यह संतोषजनक है कि लाखों लोगों के जीवन में खुशहाली और समृद्धि लाने वाली यह परियोजना अंततः आगे बढ़ी, लेकिन इस पर विचार किया जाना चाहिए कि इसके शुभारंभ में इतनी देर क्यों हुई? केन और बेतवा नदियों को जोड़ने की परिकल्पना बहुत पहले की गई थी, लेकिन लंबे समय तक उस पर विचार ही होता रहा और तत्कालीन सरकारें उस पर कोई ठोस निर्णय नहीं ले सकीं। इसे इंगित करते हुए प्रधानमंत्री ने यह सही ही कहा कि ऐसी परियोजनाओं की देरी के मूल में कांग्रेस सरकारों का रवैया रहा। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि वाजपेयी सरकार ने लगभग 20 वर्ष पहले नदी जोड़ो अभियान की रूपरेखा बनाई थी। यह सर्वथा उचित ही है कि उनकी जन्मतिथि पर केन-बेतवा नदियों को जोड़ने की परियोजना को हरी झंडी दिखाई गई। अच्छा होता कि यह परियोजना विलंब का शिकार नहीं होती। कम से कम अब तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह परियोजना तय समय में पूरी हो।

जब कोई परियोजना देर से शुरू होती है तो केवल उसकी लागत ही नहीं बढ़ती, बल्कि उससे लाभान्वित होने वाले लोगों को राहत देने में अनावश्यक देरी होती है। इससे उनमें निराशा घर करती है। यह ठीक नहीं कि सत्ता परिवर्तन के कारण कोई बहुपयोगी परियोजना ठंडे बस्ते में चली जाए। दुर्भाग्य से अपने देश में ऐसा प्रायः होता है। सरकारों के बदलने के साथ ही या तो प्रस्तावित योजनाओं की उपेक्षा का सिलसिला कायम हो जाता है या फिर सीधे-सीधे उसका विरोध शुरू हो जाता है। कभी-कभी पर्यावरण हितैषी संगठन उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं।

निःसंदेह किसी भी परियोजना को मूर्त रूप देने में पर्यावरण का ध्यान रखा जाना चाहिए, लेकिन यह जिद भी ठीक नहीं कि कोई पेड़ न कटे और किसी को भी विस्थापन का सामना न करना पड़े। पर्यावरण रक्षा के नाम पर विकास और साथ ही जनकल्याण विरोधी राजनीति नहीं की जानी चाहिए। इस राजनीति का परिचय केवल केन-बेतवा नदियों को जोड़ने के मामले में ही नहीं दिया गया। अन्य कई परियोजनाओं को आगे बढ़ाने के मामले में भी ऐसा हुआ। अच्छा हो कि अब यह संकल्प लिया जाए कि भविष्य में किसी परियोजना के मामले में ऐसा न हो। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों को इस पर आम सहमति कायम करनी होगी कि विकास के कामों में राजनीतिक मतभेद आड़े न आने पाएं।

Date: 26-12-24

भारत के लिए चुनौती बना बांग्लादेश

प्रकाश सिंह, (लेखक असम एवं उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिदेशक रहे हैं)

बांग्लादेश में हालात खराब होते चले जा रहे हैं। इसके चलते दक्षिण एशिया में जो परिदृश्य बन रहा है, वह भारत के लिए चिंता का विषय है। पाकिस्तान तो 1947 से ही भारत विरोधी हिंसात्मक कार्रवाई कर रहा है। अफगानिस्तान को भारत ने बहुत आर्थिक मदद दी, परंतु उसका कोई विशेष सकारात्मक परिणाम नहीं निकला। बांग्लादेश को हमने 1971 में स्वतंत्र

कराया। शेख हसीना के कार्यकाल में ऐसा लगा कि हमारी पूर्वोत्तर की सीमाएं अब सुरक्षित रहेंगी और इस पड़ोसी देश से अच्छे संबंध बने रहेंगे, परंतु यह अध्याय भी 5 अगस्त 2024 को समाप्त हो गया, जब बांग्लादेश में तख्तापलट हो गया और शेख हसीना को भारत में शरण लेनी पड़ी।

बांग्लादेश में सरकार विरोधी आंदोलन की अगुवाई जमाते इस्लामी, हिजबुत तहरीर और बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी के अलावा कई इस्लामी संगठन कर रहे थे। अमेरिका का एक प्रभावी वर्ग भी आंदोलनकारियों का समर्थन कर रहा था। लगता है हमारी खुफिया एजेंसी को इस षडयंत्र की भनक नहीं लगी। बांग्लादेश में इस समय एक अंतरिम सरकार चल रही है, जिसके मुख्य सलाहकार नोबेल पुरस्कार विजेता मोहम्मद यूनुस हैं। तख्तापलट के बाद से बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों और विशेष तौर से हिंदुओं पर बराबर आक्रमण हो रहे हैं। मंदिरों को तोड़ा जा रहा है, संतों को प्रताड़ित किया जा रहा है, हिंदू अधिकारियों को इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया जा रहा है, महिलाओं का उत्पीड़न हो रहा है, उनके घरों में लूटपाट हो रही है।

भारत के विदेश मंत्रालय के अनुसार 8 दिसंबर तक हिंदुओं और अन्य अल्पसंख्यकों के विरुद्ध 2,200 हिंसात्मक घटनाएं हो चुकी हैं। इनमें हिंदुओं की हत्याएं भी शामिल हैं। बांग्लादेश सरकार का ध्यान जब इन घटनाओं की ओर आकर्षित किया जाता है तो वह दलील देती है कि यह हमारा आंतरिक मामला है और घटनाएं सांप्रदायिक नहीं, बल्कि राजनीतिक है। क्या यह अजीब नहीं कि जब किसी देश में मोहम्मद साहब का कार्टून बनता है या कहीं कोई मस्जिद गिर जाती है, तब तो वह मामला वैश्विक हो जाता है और दुनिया भर के मुसलमान उस पर अपना विरोध प्रकट करते हैं, परंतु जब हिंदुओं के मंदिर तोड़े जाते हैं और उनका उत्पीड़न होता है तो यह संबंधित देश का आंतरिक मामला हो जाता है?

बांग्लादेश में कुछ घटनाओं के पीछे राजनीतिक कारण हो सकते हैं, क्योंकि वहां का अल्पसंख्यक वर्ग ज्यादातर अवामी लीग का समर्थन करता है, पर यह कहना गले के नीचे नहीं उतरता कि उन पर आक्रमण के पीछे सांप्रदायिक दुर्भावना नहीं है। भारत के विदेश सचिव विक्रम मिसरी हाल में ढाका गए और उन्होंने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के बारे में विशेष तौर से मोहम्मद यूनुस से बात की, परंतु स्थिति में कोई परिवर्तन होता नहीं प्रतीत होता। उलटे हालात और बिगड़ते जा रहे हैं। भारत के लिए विशेष चिंता के तीन पहलू हैं। पहला तो यह कि बांग्लादेश में कट्टरपंथियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। जमाते इस्लामी से प्रतिबंध हटा लिया गया है। पिछली सरकार ने जो कट्टरपंथी जेल में बंद कर रखे थे, उन्हें छोड़ दिया गया है।

अंतरिम सरकार का समर्थन कर रहा हिजबुत तहरीर एक कट्टर इस्लामी संगठन है, जो दुनिया भर में खलीफा का साम्राज्य स्थापित करने में विश्वास करता है। दूसरा यह कि बांग्लादेश का झुकाव ही नहीं, बल्कि लगाव भी पाकिस्तान से होता जा रहा है। मोहम्मद युनूस हाल में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री से जिस गर्मजोशी से मिले, वह देखने लायक था। पाकिस्तान से समुद्री रास्ते से बांग्लादेश को सामान भी जाने लगा है, जो वर्षों से बंद था। पाकिस्तानी गायक ढाका आमंत्रित किए जा रहे हैं। तीसरा यह कि चीन अब बांग्लादेश में अपना जाल और तेजी से फैला सकता है। उसकी बेल्ट एंड रोड एनिशिएटिव योजना को और गति मिल सकती है। इसके अलावा बांग्लादेश सैन्य सामग्री चीन से खरीदने जा रहा है।

बांग्लादेश की घटनाओं को देखते हुए भारत के समक्ष तीन आशंकाएं उभर रही हैं। पहली यह कि क्या बांग्लादेश में भी अफगानिस्तान की तरह कोई तालिबानी राज्य स्थापित हो जाएगा? दूसरी क्या बांग्लादेश फिर से पूर्वोत्तर के आतंकी-

अलगाववादी संगठनों की शरणस्थली बन जाएगा? क्या बांग्लादेशी हिंदुओं की सुरक्षा सुनिश्चित हो सकेगी? इस समय वहां हिंदुओं की आबादी 7.95 प्रतिशत है। एक समय वह 20 प्रतिशत से अधिक थी। स्थिति काफी विषम है, परंतु हमें उसका समाधान तो ढूंढ़ना ही पड़ेगा। इतिहास साक्षी है कि अगर आपके पास आर्थिक और सैन्य शक्ति है तो आप किसी भी देश से निपट सकते हैं। भारत इन दोनों क्षेत्रों में अपनी सामर्थ्य तेजी से बढ़ा रहा है। बांग्लादेश में कैसी भी सरकार बने, हमें उससे निपटने में ज्यादा दिक्कत नहीं होनी चाहिए। हमें किसी पड़ोसी देश पर आक्रमण नहीं करना है, परंतु उसे यह मालूम होना चाहिए कि अगर उसने कोई भारत विरोधी कार्रवाई की तो उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

पूर्वोत्तर की सीमाओं को हमें फिर से सुरक्षित करना पड़ेगा। बांग्लादेश की 4,096 किमी सीमा पर सीमा सुरक्षा बल तैनात है, उसे अपनी ड्यूटी और मुस्तादी से करनी पड़ेगी। हिंदुओं की सुरक्षा के लिए हमें बांग्लादेश पर अंतरराष्ट्रीय दबाव बनाना पड़ेगा। अमेरिका में ट्रंप के राष्ट्रपति बनने के बाद संभवत हमें इसमें मदद मिलेगी। बावजूद इसके बांग्लादेश में हिंदुओं के उत्पीड़न के बारे में हमें सभी देशों में प्रचार करना होगा। अगर स्थिति में सुधार नहीं होता तो भारत को शायद आबादी की अदला-बदली का प्रस्ताव रखना पड़े। वर्ष 2000 में सामने आई माधव गोडबोले कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में करीब 1.5 करोड़ बांग्लादेशी अवैध रूप से रह रहे हैं। वर्तमान में यह संख्या तीन-चार करोड़ हो सकती है। बांग्लादेश की अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही है। हो सकता है कि वहां के नेतृत्व को जल्दी यह समझ आ जाए कि भारत से मदद और अच्छे संबंधों के बिना देश को सुगमता से चलाना मुश्किल होगा । यह आशा की जानी चाहिए कि बांग्लादेश सही रास्ते पर आ जाएगा, लेकिन हमें प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 26-12-24

दिलों में बसा रहेगा बेनेगल का सिनेमा

अजय कुमार शर्मा

अपनी पहली ही फिल्म 'अंकुर' से हिन्दी सिनेमा को सृजनात्मक सिनेमाई अभिव्यक्ति की एक नई सुंदर और सार्थक पूंजी देने वाले श्याम बेनेगल का अवसान हिन्दी सिने इतिहास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल का मानो पटाक्षेप है। उन्हें भारतीय समानांतर सिनेमा का पिता कहा गया लेकिन वह उससे कहीं ज्यादा थे। हालांकि वह स्वयं समानांतर सिनेमा शब्द से सहमत नहीं थे। 2009 में बीबीसी को दिए इंटरव्यू में उन्होंने कहा था, 'यह सिनेमा मुख्य सिनेमा से हट कर है, या इस तरह की फिल्मों से मनोरंजन नहीं होता। मैं इस तरह की बातों से कभी सहमत नहीं रहा। हर निर्माता-निर्देशक का फिल्म बनाने का अलग तरीका होता है। मुझे लगा कि आम ढर्रे की फिल्मों में कुछ अलग करने का स्कोप नहीं तो मैंने यह रास्ता चुना।' गैर-हिन्दीभाषी होते हुए भी हिन्दी फिल्म बनाने वाले श्याम बेनेगल के सिनेमा को किसी खास खांचे में डाल

कर वर्गीकृत करना बड़ा मुश्किल है। यह टाइप होकर भी टाइड नहीं है और लाउड होकर भी लाउड नहीं है। समानांतर सिनेमा आंदोलन के दौरान बेनेगल द्वारा निर्देशित फिल्मों- 'अंकुर' (1974), 'चरनदास चोर (1975), 'निशांत (1975), 'मंथन' (1976), 'भूमिका' (1977), 'कोंडूरा' 'जुनून' (1978), 'कलयुग' (1991), आरोहण' (1982), 'मंडी' (1983), 'त्रिकाल' (1985), 'सुष्मन' (1987), 'अन्तरनाद' (1991), 'सूरज का सातवां घोड़ा' (1993) आदि तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, बल्कि इस दौर के बीतने के बाद भी उन्होंने मम्मो (1994), सरदारी बेगम, द मेकिंग ऑफ द महात्मा (1996), समर (1999), हरी भरी, जुबैदा (2000) जैसी अनेक सार्थक फिल्में भी बनाई दूरदर्शन के लिए 'यात्रा', 'कथा सागर', 'अमरावती की कथाएं', 'भारत एक खोज' जैसे चर्चित धारावाहिक भी बनाए। उन्होंने इक्कीसवीं सदी के आरंभ में 'सुभाष चंद्र बोस द फॉरगॉन हीरो' (2004), 'वेलकम टू सज्जनपुर (2008) और 'वेलडन अब्बा' (2009) फिल्में बनाई और 2014 में 'संविधान' जैसा महत्त्वाकांक्षी धारावाहिक लेकर राज्य सभा टीवी' चैनल पर आए।

बेनेगल के सिनेमा में कथानक, संगीत और नृत्य प्रमुख तत्त्व के रूप में उभर कर सामने आते हैं। देहाती बोली और रहन-सहन की बारीकियों की समझ उनमें है। वे महत्त्वपूर्ण विषयों पर यथार्थवादी शैली में सबकी समझ में आने वाली फिल्में बनाते हैं, जो सामाजिक और समस्यापरक तो हैं पर अंत में समस्या के स्पष्ट समाधान की बजाय प्रतीकात्मक आशावाद को प्रस्तुत करते नजर आते हैं। बेनेगल के पात्र साधारण हैं पर असाधारण चरित्र हैं; जो सामान्य परिस्थितियों में जीते हैं पर असामान्य स्थितियों में रहते हैं। बेनेगल के सिनेमा का मूलभूत तत्त्व है नायक या नायिका की अपने परिवार, समाज, संसार के बंधनों से मुक्त होकर स्वच्छंदता और पूर्णता की चाह । रिश्तों के दबावों और सामाजिक रूढ़ियों कुरीतियों से मुक्त करके अपनी जड़ों की विश्वस्त जमीन से असुरक्षित आकाश में स्थापित करने की बेनेगल की यह सोच कहयों को सतही रूमानी, फंतासी यहां तक कि घातक भी प्रतीत हो सकती है लेकिन उनकी नजर में नारी ही नहीं, यह पूरी मानवता की भलाई के लिए आवश्यक है। बेनेगल की नायिका परिस्थितियों की शिकार होने के बावजूद झुकती और टूटती नहीं है। जानती है कि पुरुषों के चेहरे बदलते हैं, बिस्तर बदलते हैं, पर वे नहीं बदलते। बेनेगल अपनी परंपरा, जड़ों, अपने बीते युग की ओर लौटने के ख्वाब नहीं देखते। किसी स्वर्णिम अतीत का आकर्षण उन्हें नहीं जकड़ता। आधुनिक सभ्यता की तमाम विकृतियों, नैतिक मूल्यों के हास के बावजूद वे पिछड़े ग्रामीणों को देश की मुख्यधारा में जोड़ने के पक्षधर हैं। उनकी कई फिल्मों में वर्गसंघर्ष और जातिद्वंद्व भी है पर बेनेगल न जटिल हैं, न ही लाउड वे नारेबाजी में विश्वास नहीं रखते, फिर चाहे नारेबाजी जनवाद या साम्यवाद के समर्थन में ही क्यों न हो। क्रांति की बजाय बेनेगल का विश्वास सामाजिक चेतना जगाने में है। इस लिहाज से देखे जाने पर बेनेगल का सिनेमा श्रेष्ठ सिनेमा है, जिसमें व्यावसायिक और कला, दोनों सिनेमाओं का मिश्रण है। हिन्दी सिनेमा में उनके योगदान के बारे में उनके साथ लगभग 35 साल तक काम कर चुके अभिनेता और पटकथा लेखक अतुल तिवारी उन्हें 'गेटवे ऑफ इंडियन सिनेमा' की उपाधि देते हैं। श्याम बेनेगल के साथ 'समर', 'वेलकम टू सज्जनपुर' और 'वेलडन अब्बा' जैसी फिल्में लिख चुके अशोक मिश्र उन्हें देश की नब्ज समझने वाले ऐसे प्रगतिशील और समर्थ निर्देशक के रूप में याद करते हैं, जिन्होंने जनता को हर बार नये और रोचक किस्सों से रूबरू कराया। कभी कुछ रिपीट नहीं किया। उन्हें ज्ञानी गुरु की संज्ञा देते हुए वे कहते हैं जितने सरल और सहज वह थे उतना ही सहज और सरल तथा शुद्ध सिनेमा था उनका जो उनकी तरह ही हमारे दिलों में हमेशा बसा रहेगा।